

अटल जी की चुटकियाँ

हमारे भारतीय सिनेमा का एक सुपरिचित और जाना-पहचाना फ्रेम है। जाने-पहचाने कथानक में एकदम स्थायी रूप से झरते दाग की तरह जमकर बैठे हुए जाने-पहचाने पात्र हैं। इतने जाने-पहचाने कि रेगुलर दर्शक पोस्टर देखकर फिल्म की कहानी बता सकता है। कुछ स्थायी पात्रों से मिलिये-

★ **हीरोइन:** हीरोइन के होंठ हमेशा मुस्कुराते रहते हैं, कपूर लचकती रहती है और जिया घड़कता रहता है। वह हीरो के लिए गाना गाती है और दर्शकों के लिए नहाना है। हीरोइन को देखकर दर्शक अपने आपको भूल जाता है और हीरो अपने माँ-बाप को भूल जाता है। वह हमेशा सोलह साल की रहती है। हीरोइन फिल्म की जान होती है। वह दर्शकों की भी जान होती है। अगर फिल्म में हीरोइन न हो, तो मुए हीरो को दर्शक एक पल बर्दाश्त नहीं करे। हीरोइन विलन की भी जान होती है। वह हीरोइन को जी-जान से चाहता है, लेकिन अपनी बेवकूफियों से उसे नाराज़ कर देता है। गरज वह कि एक अदद हीरोइन, एक साथ कड़वों की जान होती है। वस्तु के साथ-साथ जिनना हीरोइन ने अपने आपको बदला है, उतना किसी पात्र ने नहीं बदला। पहले वह चांद के बहाने, या चांद का सहारा लेकर अपने प्यार का इज़हार करती थी। आजकल वह हीरो के कंधे से कंधा मिलाकर प्यार के मैदान में उतरती है। पहले वह घुंघट के पीछे के रज़ बताने में भी कन्नी काट जाती थी। आजकल वह चोली के पीछे के रहस्य भी बड़े उदार मन से बताने लगी है। हमें भविष्य की हीरोइन से बड़ी उम्मीदें हैं।

★ **हीरो:** हीरो सिर्फ हीरो होता है। वह हीरो होने के अलावा कुछ नहीं हो सकता। वह चाहे किसी सिराने की दुकान पर बिटाने के लायक नहीं हो, तब भी हीरो होता है। वह मारामारी करता है, तब हीरो होता है। वह कन्याओं को छेड़ता है, तब हीरो होता है। वह स्मगलिंग करता है, तब हीरो होता है। वह शराब पीता है, तब हीरो होता है और हेरत अंग्रेज़ कारनामे करता है, तब तो वह हीरो होता ही है। हीरो को हीरो होने से हीरो का बाप भी नहीं रोक सकता। फिल्म में अगर कहानी हो, तो वह हीरो के इर्द-गिर्द घूमती है और हीरो हीरोइन के इर्द-गिर्द घूमता है। हीरो फिल्म में टुच्चे काम नहीं करता। वह नल पर जाकर पानी नहीं भरता। अगर हीरो नल पर जाकर पानी भर ले, तो उसकी फिल्म पानी नहीं मांगे। हीरो सब्जी मार्केट जाकर सब्जी नहीं खरीदता। वह उसकी शान के खिलाफ है। हाँ, हीरोइन अगर सब्जी बेचने वाली हो, तो वह जरूर जायेगा। शान को ऐसी-तैसी!

★ **साइड हीरो:** किसी फिल्म में एक साइड

मुंबई वासी श्री आश कर्ण अटल पिछले 36 वर्षों से स्वतंत्र लेखन कर रहे हैं। देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में आपके लेख और कविताएँ निरंतर छपती रहती हैं। इनकी हास्य-व्यंग्य कविताओं के कई संग्रह भी छप चुके हैं। इन्हें काव्य-पाठ में अच्छी महारत हासिल है। आकाशवाणी और दूरदर्शन के कार्यक्रमों में यह खूब नज़र आते हैं। देश-विदेश के 2000 से अधिक काव्य-पाठों और टेली फिल्म 'नमूना' और डॉक्यूमेंटरी 'शर्मा गए सिनेमा' बन चुकी हैं, वहीं अपने राजश्री के मशहूर निर्देशक श्री सूरज बडजात्या की विभिन्न फिल्मों में पटकथा लेखन भी किया है। आप अमेरिका, रूस,



हांगकाँग, जर्मनी, स्विट्ज़रलैंड, बेल्जियम, हॉलैंड, थाईलैंड, नेपाल, संयुक्त अरब अमीरात और ओमान आदि देशों की साहित्यिक यात्राएँ भी कर चुके हैं।

'रेल दर्पण' पत्रिका के लोकप्रिय स्तम्भ-विशेष अतिथि रचनाकार' में शिरकत कर चुके श्री अटल जी के व्यक्तित्व का एक और शानदार पहलू हम अपने पाठकों के लिए 'व्यंग्य वीथिका' स्तम्भ के ज़रिये पेश कर रहे हैं, जिसमें आप भारतीय सिनेमा जगत पर उनके द्वारा की गई व्यंग्य-विनोद भरी चुटकियों का मज़ा ले पायेंगे। हमें विश्वास है कि आपको हमारी यह अनूठी पहल जरूर पसंद आयेगी।

प्रधान सम्पादक

हीरो भी होता है। साइड हीरो यानी सहनायक। दिखने में वह कुछ-कुछ हीरो जैसा ही लगता है। वैसे ही कपड़े पहनता है, वैसे ही चलता है और वैसे ही बेवकूफियाँ करता है, जैसी हीरो करता है। साइड हीरो सबसे बड़ी बेवकूफी यह करता है कि वह उस लड़की को दिल दे बैठता है, जिसे हीरो ने पहले से ही दिल दे रखा है। बेचारा की बदकिस्मती देखो कि उसे अन्त में पता चलता है कि जिसे वह अपनी समझ कर पसुरा रहा था, वह तो किसी और की है। जिस प्रेमिका समझ रहा था, वह तो होने वाली भाभी है। जब गीदड़ की मौत आती है, तो वह गाँव की तरफ मुँह करता है। जब साइड हीरो की मौत आती है, तो वह हीरोइन से प्यार करने लगता है, फिर गीदड़ भी रोंता है और साइड हीरो भी रोंता है। 'अब गलती की है, तो भुगतो! पहले ही अपनी औकात में रहते। साइड हीरो होकर हीरोइन को दिल देने की तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई?' अब बेचारा साइड हीरो के लिए एक ही रास्ता बचता है, कुर्बानी का रास्ता। हीरो की जान बचाने के लिए, विलन के राशों मारा जाता है। बेचारा साइड हीरो! चौबेजी छब्बेजी बनने गए, दुबेजी भी नहीं रहे।

★ **हीरो की बहन:** फिल्म इतिहास के मध्य काल में कोई फिल्म हीरो की बहन के बगैर पूरी नहीं होती थी। हीरोइन हो न हो, बहन जरूर होती थी। बहन भरी-पूरी जवान, चार बच्चों की माँ लगती, पर भैया के सामने बच्ची बनी रहती। फिल्म की पहली रील में बहन भाई की कलाई पर राखी बांधती थी और लगे हाथ एक राखी का गीत भी गा लेती थी। दूसरी रील में बहन भाई को छेड़कर भागती थी। हीरो किसी खटिया या दीवार के पूरे दो चक्कर दौड़कर बहन को पकड़ लेता। तब बहन मटक कर हीरो से कहती, 'भैया, मुझे एक अच्छी सी भाभी ला दो ना।' हालाँकि भैया पहले से ही इस काम पर बड़ी गम्भीरता से लगे हुए होते, पर ऊपर से कहते, 'नहीं पगली, पहले मैं तेरे हाथ पीक कर दूँ।' अब यहाँ से शुरू होता था दर्शकों के लिए आँसुओं का सफ़र, जो फिल्म के यमने पर ही थमता था। होता यूँ था कि या तो बहन के साथ रेप हो जाता था और वह आत्महत्या कर लेती थी। या वह लड़का शादी से मना कर देता था, जो बहन के लिए खोज जाता था या लड़के का बाप दहेज की खातिर बारात लौटा ले जाता। यह सब नहीं होता, तो ऐसा होता कि बहन की सास ललित पवार निकल आती। ऐसी फिल्म में दर्शकों को बाईं घंटे रुलाने की पूरी गारंटी होती थी। बेचारा हीरो बहन का बदला लेने या उसका घर बसाने के चक्कर में फँस कर रह जाता था। अपनी हीरोइन के पास तक नहीं फटक पाता था और मान लो पास फटकने का कोई मौका निकल भी आता, तो सेंसर बोर्ड उसे ठीक से पास नहीं जाने देता, इसलिए ऐसी

फिल्मी दुनिया के स्थायी पात्र

फिल्मों को साफ-सुथरी फिल्में कहा जाता था।

★ **हीरो और हीरोइन के बाप:** फिल्म में हीरो और हीरोइन की कुंडली भले ही मिल जाए। हीरो के बाप और हीरोइन के बाप की कुंडली कभी नहीं मिलती। फिल्म में हीरो का बाप अमीर होगा, तो हीरोइन का बाप गरीब ही होगा। प्यार की खबर के साथ ही अमीर बाप फैसला सुना देगा, यह शादी हरगिज़ नहीं हो सकती। 'लो, कर लो शादी। बाप अड़ गया। अब कुछ नहीं हो सकता। दर्शक को सदमा लगता है। भारतीय फिल्म का दर्शक, यानी बेगानी शादी में अब्दुल्ला दीवाना। बाप और बेटे की लड़ाई में अंत तक पिस्ता है। उधर हीरो हीरोइन के साथ दो युगल गीत गा चुका होता है। वह अपनी मेहनत बेकार जाते देखकर बग़ावत का रास्ता चुनता है। दर्शक की सोई उम्मीद फिर जाग पड़ती है। बेचारा हीरोइन का गरीब बाप तो पहले से ही माना हुआ होता है। फिफ्टी परसेंट मामला तो वैसे ही साफ है। बाकी फिफ्टी परसेंट भी हीरो किसी तरह सुलटा लेता है। अगर दोनों के बाप अमीर हैं और बराबर की पोझीशन के हैं, तो दोनों के बीच कोई खानदानी दुश्मनी निकल आती है। कुंडली फिर भी नहीं मिलती। ऐसी फिल्म में हीरो के साथ-साथ हीरोइन की भी मट्टी पलटी होती है। बहुत दुष्ट होते हैं हीरो और हीरोइन के बाप लोग।

★ **जानवर कलाकार:** हीरो-हीरोइन, विलन, कॉमेडियन और कई चरित्रों के अलावा फिल्मों में एक जानवर कलाकार भी होता है, जैसे हाथी, घोड़ा, बंदर, कुत्ता, भालू, साँप, वगैरह-वगैरह। फिल्मों में ये जानवर कलाकार अपनी परवाह छोड़कर हीरो-हीरोइन के लिए काम करते हैं। उनके लिए विलन से पंगा लेकर अपने लिए मुसीबत मील लेते हैं। हीरो और हीरोइन का मिलन करने की धुन में घोड़ा अपनी घोड़ी और कुत्ता अपनी कुतिया को भुला देता है। यहाँ आकर जानवर कलाकार त्याग और बलिदान में आदमी से बाज़ी मार ले जाता है। पर असली मुसीबत तो तब खड़ी होती है, जब किसी फिल्म में कोई घोड़ा हीरो से एक्टिंग में बाज़ी मार ले जाता है। अखबारों में घोड़े के अभिनय की तारीफ़ छपती है। इसको फिल्मों की भाषा में कहते हैं कि 'घोड़ा एक्टिंग में हीरो को खा गया।' फिल्म के अंत में हीरो को हीरोइन मिल जाती है, लेकिन दर्शकों की सारी तालियाँ घोड़ा अपनी जेब में डालकर चल देता है।

★ **विलन:** पार्राई औरत माँ समान और पराया धन मिट्टी के बराबर होता है। यह बात कभी किसी विलन की समझ में नहीं आई। हमेशा पार्राई औरत और पराये धन की खातिर अपनी मिट्टी खराब कराई। राक्षस, कंस और दुर्योधन से लेकर ग़ाब सिंह और भोगेश्वर तक कितने ही विलन आए, हीरो से टक्कर आए और मृत्युलोक सिंघार। किसी विलन ने अपने वरिष्ठ विलन से कोई सबक नहीं सीखा, क्योंकि विलन न सिर्फ हीरो का दुश्मन होता है, अपनी अकल का भी दुश्मन होता है। हीरो के घुंसे और पुलिस के जूते खाने के बाद भी उसे अकल नहीं आती। इसके पीछे एक ही कारण है और वह है, शराब। विलन शराब छोड़ दे, तो अगले दिन सुखी हो जाए। उसकी फितरत सुधर जाए। समझाना अपना



फर्ज़ है, समझा दिया। समझना-न-समझना विलन की मज़ी। वैसे जो हीरो की लातों से नहीं सुधरा, वह अपनी बातों से क्या सुधरागा?

★ **कॉमेडियन:** आजकल फिल्मों में कॉमेडियन की उपेक्षा होने लगी है, क्योंकि हीरो खुद कॉमेडी करने लगता है। यह हीरो ने अच्छा नहीं किया। उसने कॉमेडियन के पेट पर लात मारी है। उसका हक छीना है। वरना पहले की फिल्मों में इधर हीरो का एक सीन गया। उधर कॉमेडियन का सीन आया। इधर हीरो दर्शकों को रुला कर जाता। उधर तुरंत कॉमेडियन आता और हँसाकर दर्शकों का हिसाब-किताब बराबर कर देता। उन्हीं दिनों एक टाइम ऐसा भी आया था, जब कॉमेडियन हीरो पर भारी पड़ने लगा था। लोग उसकी एन्टी पर तालियाँ बजाने लगे थे। नतीजा यह हुआ कि

कॉमेडियन अपनी खाल से बाहर आ गया। वह हीरो बन बैठा। नतीजा, बोबी का कुत्ता न घर का रहा, न घाट का। आजकल कॉमेडियन हीरो का चमचा बन कर रह गया है। हीरो के दोस्त, उसके दोस्त, हीरो के दुश्मन, उसके दुश्मन। हीरो हँसता है, तो वह भी हँस लेता है। हीरो पिटता है, तो वह भी पिट लेता है।

★ **ठाकुर:** किसी फिल्म में एक ठाकुर होता है। यह फिल्म के शुरू में ठाकुर होता है, बीच में ठाकुर होता है और अंत तक ठाकुर ही रहता है। यह ठाकुर, रियल लाइफ में क्या करता है, वह तो पता नहीं, पर फिल्मों में यह गरीबों के साथ अत्याचार और हीरोइन के साथ बलात्कार के काम आता है। किसी फिल्म में कोई लाला भी हो, तो गरीबों के साथ अत्याचार की ज़िम्मेदारी वह सम्भाल लेता है। ऐसे में ठाकुर के पास हीरोइन को सताने का एक सूत्रीय कार्यक्रम रह जाता है। देश की इतनी तरक्की के बाद भी वह फिल्मों ठाकुर आज भी वहीं खड़ा है, जहाँ वह पहली फिल्म में खड़ा था। एक अट्टहास के साथ पर्व पर प्रकट होता है और एक चीख के साथ विलीन हो जाता है। घोड़े पर चढ़कर आता है और अर्धश पर चला जाता है। ठाकुर खतम। फिल्म खतम।

★ **चांद:** मूक फिल्मों के ज़माने से ही चांद फिल्मों में छोटे-बड़े रोल करता आ रहा है। कुछ फिल्मों के तो टाइटल चांद पर रखे गये, अगर आज तक चांद को फिल्मों में एक भी रंग का रोल नहीं मिला। करीब-करीब जूनियर आर्टिस्ट की हैसियत रही है फिल्मों में चांद की। किसी फिल्म में हीरोइन के मुखड़े के डुप्लीकेट का रोल मिल गया, तो किसी फिल्म में हीरो-हीरोइन के पैगाम एक-

दूसरे तक पहुँचाने का रोल मिल गया। ज्यादा हुआ, तो दो प्रेमियों के प्रेम का मूक गवाह बनाकर खड़ा कर दिया। वह मूक फिल्मों में भी मूक रोल करता था। आज बोलती फिल्मों में भी मूक रोल कर रहा है। कल की नन्ही सी बालिका, जो चांद को मामा कह कर बुलाती थी, आज बड़ी होकर मामा के हाथ अपने प्रेमी को धड़ल्ले से पैगाम भेजती है। न लाज, न लिहाज़। कल मामा बनाया, आज पोस्टमैन बना दिया। जितना अपमान फिल्मों में चांद का हुआ है, उतना किसी आर्टिस्ट का नहीं हुआ। सॉरी भाई चांद!

क्रमशः... अगले अंक में जारी



★ साढ़ा जीवन उच्च विचार : उसके जीने का ढंग बड़ा सरल था, पुराने और मैले कपड़े, बड़ी हुई दाढ़ी, महीनों से जंग खाते दांत और पहाड़ी पर खानाबदोश जीवन, जैसे अथककालीन भारत का फकीरों और जीवनों में अपने लक्ष्य की ओर इतना समर्पित कि ऐशो-आराम और विलासिता के लिए एक पल की भी फुर्सत नहीं और विचारों में उत्कृष्टता के क्या कहने? - 'जो डर गया सो भर गया' जैसे संवादों से उसने जीवन की क्षणभंगुरता पर प्रकाश डाला था। ★ दयालु प्रकृति : ठाकुर ने उसे अपने हाथों से पकड़ा था। इसलिए उसने ठाकुर के सिर्फ हाथों को सजा दी। अगर वो चाहता तो गर्दन भी काट सकता था, पर उसके ममतापूर्ण और करुणामय हृदय ने उसे ऐसा करने से रोक दिया। ★ उत्प-संगीत का शौकीन : 'महबूबा ओ महबूबा' गीत के समय उसके कलाकार हृदय का परिचय मिलता है। अन्य डाकुओं की तरह उसका हृदय शुष्क नहीं था। वह जीवन में नृत्य-संगीत एवं कला के महत्व को समझता था। बसन्ती को पकड़ने के बाद उसने मन का नृत्य प्रेमी फिर से जाग उठा। उसने बसन्ती के अन्दर छुपी नर्तकी को एक पल में महफान लिया था। गौरतलब यह कि कला के प्रति अपने प्रेम को अभिव्यक्त करने का वह कोई अवसर नहीं छोड़ता था। ★ अनुशासन प्रिय नायक : जब कालिया और उसके दोस्त अपने प्रोजेक्ट से नाकाम



गवर् सिंह का चरित्र चित्रण

होकर लौटे तो उसने कर्तई डिली नहीं बरती। अनुशासन के प्रति अपने अगाध समर्पण को दर्शाते हुए उसने तुरंत सजा दी। ★ हास्य-रस का प्रेमी : उसमें गंजब का सेंस और झुझार था। कालिया और उसके दो दोस्तों को मारने से पहले उसने उन तीनों को खूब हँसाया था, ताकि वो हँसते-हँसते दुनिया को अलविदा कह सकें। वह आधुनिक युग का लाफिंग बुद्धा था। ★ नारी के प्रति सम्मान : बसन्ती जैसी सुंदर नारी का अपहरण करने के बाद उसने उससे एक नृत्य का निवेदन किया। आज-कल का खलनायक होता तो शायद कुछ और करता। ★ भिक्षुक जीवन : उसने हिन्दू धर्म और महात्मा बुद्ध द्वारा दिखाये गये भिक्षुक जीवन के रास्ते को अपनाया था। रामपुर और अन्य गाँवों से उसे जो भी सूखा-कच्चा अनाज मिलता था, वो उसी से अपनी गुज़र-बसर करता था। सोना, चांदी, बिरयानी या चिकन मलाई टिक्का की उसने कभी इच्छा ज़ाहिर नहीं की। ★ सामाजिक कार्य : डकैती के पेशे के अलावा वह छोटे बच्चों को मुलाने का भी काम करता था। सैकड़ों माताएँ उसका नाम लेती थीं, ताकि बच्चे बिना कलह किये चुपचाप सो जायें।

प्रसूति: प्रमोद कुमार,

गोपीनी सहायक-II, मुख्य जनसम्पर्क कार्यालय, वर्ग-6

सुना था जापान में ऑफिसों में बाँस लोग के रबर के पुतले कैंटीन में रख दिये जाते हैं। लोग आते-जाते उनके कान ऐंठा करते हैं। कान मरोड़ सकते हैं अबवा चाहें तो घुँसे भी मार सकते हैं। जापान वालों का कहना है कि

दास्तान-ए-बाँस

इसके अन्दर 'वर्कर' बहुत ही 'टेन्शन प्री' रहते हैं। बेहतर उत्पादन देते हैं और असली बाँस महफूज रहते हैं। यँ तो भारत एक सामंजस्यवादी राजतंत्र रहा है, फिर भी बाँस लोगों को सोचे-सोचें वर्कर के हवाले ही कर देने का रिवाज़ है। अब वर्कर की थ्रड है उन्हें गिराये, घेरावे कर अथवा चाकू ही मार दे। पहले बाँस अपराध की दुनिया में होते थे। बाँस के नाम से जो तखीर ज़ेहन में आती थी, वह सिगार पर रहे काले चयमा, हैट लगाये, ओवरकोट पहने खुंखार आदमी की होती थी, जो बात-बात में गोली चला देता था। उसकी गोद में बिल्ली डालींग व कुर्सी के हथे पर लिली डालींग हुआ करते थे। कालान्तर में बाँस लोगों में रूपान्तर हुआ और वे डॉन, किंग और विधायक बन गये। बिल्ली की जगह दफ्तर में उनकी मिल्क पीछे, कवतूर और मधुपक्खी के छते। लिली की जगह बेज़ार, शकी-हारी, मजबूर लहनाएँ, जो या तो देहेज जुटा रही थी या जीवन स्तर को ऊपर उठाने की रस्साकसी कर रही थी। बाँस आलोचना का सर्व प्रिय टॉपिक होता है। बाँस की निन्दा चटपटी फूट चाट की तरह होती है। फूट चाट सभी को प्रिय होती है। बस मसाला कम-ज्यादा होता रहता है। बाँस की छोटी-छोटी बातों को भी नोट कर उनका मूख्य विश्लेषण टी टाइम और लंच टाइम में अंशुरी होता है। कैसे वह हमेशा बन-उन के रहता है अथवा उसे कपड़े पहनने की तयारी नहीं। कैसे वह हरदम हँसता रहता है अथवा मनहूस है, मुस्कुराता भी नहीं। कैसे वह जुबान, दिल का, कलम का वह फिर पुरा पुरा खरब है। चरित्र के बाद गौर करने हैं बाँस की अन्य विशेषताओं पर। यह वह प्रणवी है, जो आप दफ्तर जल्दी जाते हैं, तो भरो से आता है और आप देर से जाते हैं, तो वह जल्दी आ बगमकता है। बिजकल भी भरोसे लायक होती है। टाइम-टेडिंग मोकर करना उसकी हवीं है। खुद को तो बीवी-बच्चों की परवाह है नहीं, आये दिन आपको भी देर रात तक दफ्तर में बिठाता है। किसी को हँसता तो देख ही नहीं सकता, कुछ सनकी भी मालूम होता है। कभी तो खुश होकर पूरे के पूरे खानदान की सेहत के बारे में पूछता है, कभी ऐसे देखता है जैसे वह बात मिले हों। बात-बात में अंग्रेज़ी बोलना भी बाँस लोगों का एक गुण होता है। खामकर ब्लंडी, नॉनसेंस, आउटकास्ट स्टैड, चाली, शॉर अप, ओह हेल, यू डोनेट, नो भी, रशिया आई वॉन्ट लैव यू, जॉनी, आदि-आदि। बाँस लोग रक्तचाप, मुंहभरे और हृदय रोग से अक्सर पीड़ित देखे जाते हैं। बाँस लोग सिगरेट-पान का शौक भी करते हैं, पर पीछे यह कम से कमर हो गया है। इयर 'ड्रिक्स' का 'कॉन्टैल' का फैशन चल निकला

है। इसमें सभी उम्र और लेवल के बाँस लोगों की सक्रिय सहभागिता रहती है। एक अच्छे बाँस को हँसना तो डूरा, मुस्कुराना भी कम से कम चाहिए। इससे रीढ़ पड़ता है। यदा-कदा परिचित लोगों को भी पहचानने से इन्कार कर देना चाहिये। बाँस लोगों को सदा समय की कमी रहती है। कोई निर्माण दे तो सीधे वक्त की कमी बताती चाहिये। हज़ार ज़िद करे तो समझा रहे में देर से जाना चाहिये और बार-बार घड़ी देखते हुए जितनी जल्दी हो वापस चल देना चाहिये। आपको और चार जगह जाना है और आशिर आप बाँस हैं, निठल्ले नहीं जो खाली बैठे कौं और काम हो नहीं। बाँस लोग शारीरिक रूप से एक जगह रहते हैं, तो दिमाग से कहीं और। ठाले भी बैठना हो तो बताते नहीं। लुक बिजो डू नर्थिंग। बाँस वह-जो मातहत की कमी निकाले, उसे रोकता-टोकता रहे। आधे दिन की छुट्टी चाहिये, तो आधा दर्जन समाल करे। बाँस वह जो हमेशा घुमना रहे, कभी किसी बात पर, कभी किसी और बात पर। बाँस कभी भुंगलोग या केले नहीं खायकरा करते। वे काजू खाते हैं और जूस पियते हैं। बाँस हिन्दी के अरुबार या मासिक पत्रिका नहीं पढ़ते। सदैव अंग्रेज़ी के पढ़ते हैं। बाँस मोके-बेगोके वे कहने से भी नहीं चूकते कि उनकी हिन्दी बहुत 'वीक' है। उन छात्राओं की तरह जो जे.पू.यू. (जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय) के दाबे वाले से कहती सुनी जाती हैं 'काशीराम जी। टुप हमको टू क्वेन टी दीजिये प्लीज। डाइट डाल (दाल) बनाया है तुमने।' चाहे ओल्ड फेरान के ही क्वेन न हो? बाँस हमेशा सूट-बूट में रहते हैं। टाई, चयमा, सफारी सूट तो बने ही बाँस के लिए हैं। बाँस गंजा हो तो सफ़फ़ो जैके सोने में सुगया। बाँस अबल तो फिल्ले देखे ही नहीं, कभी देखे भी हैं तो केवल अंग्रेज़ी फिल्ले। फिल्ले जितनी ओरिजन और बोरिंग होगी, बाँस लोगों को उतनी ही पसंद। बाँस एक अथ चक्कर विश्वास का ज़रूर लगाना आते हैं, हो सके तो सफ़फ़ो खर्च पर। इससे वार्तालाप शुरू करते, खस करने और बीच-बीच में अपनी धाक जमाने के लिए बहुत अच्छा मेटेरियल मिलता है। यथा 'लार्ड विक्टर जब मैं स्टैंड्स में था...' का बार लंडन में भरे साथ थी हुआ... 'आइसक्रीम तो मैंने एफिल टॉवर पर खाई थी...' बाँस लोग साइकिल या स्कूटर पर भी नहीं चला करते। वे कार में और कम से कम चार्टर्ड बस से नीचे तो सफ़र ही नहीं करते। दूसरे शहर जाना हो, तो जहाँ तक हो सके 'फ्लाई' करते हैं। वेतन चेक से लेते हैं। अपने बिलों का भुगतान क्रेडिट कार्ड से करते हैं। उनके 'फेवरिट' लेखक होते हैं। पेन्डर और एक्टर होते हैं। वो भी देशी नहीं खलिखन विदेशी। हुडूयू वे बाँस की कल विश्लेषण हैं। सूची लम्बी हो सकती है, मगर बाँस को ज्यादा लिखना-पाना शोभा देता है क्या?

रवीन्द्र कुमार,

मुख्य कार्मिक अधिकारी (ऑथोमिक सम्बंध), मध्य रेल, मुंबई सी एस टी